'अप्प दीपो भव'

वॉयस ऑफ बुद्धा

Postal Reg. No.-DL(ND)-11/6144/2016-18
WPP Licence No.- U(C)-101/2017-18
R.N.I. No. 68180/98

Date of Publication : 30.04.2017
Date of Posting on concessional rate :
2-3 & 16-17 of each fortnight

मूल्य : पाँच रूपये

प्रेषक : डॉ0 उदित राज (राम राज) चेयरमैन – जस्टिस पब्लिकेशंस, टी–22, अतुल ग्रोव रोड, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–110001, फोन : 23354841–42

Website : www.uditraj.com E-mail: parisangh1997@gmail.com

● वर्ष : 20 ● अंक 11 ● पाक्षिक ● द्विभाषी ● कुल पृष्ठ संख्या 8 ● 16 से 30 अप्रैल, 2017

14 अप्रैल, 2017 को 'दैनिक जागरण' एवं 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेख

राजनीति में अम्बेडकरवादी विचारधारा

डॉ. अम्बेडकर का मूल दर्शन देखें तो वह भारत में जातिविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पीछे दलित–पिछड़े की सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक परिस्थिति ही नहीं बल्कि भारत का लगभग 2000 वर्ष पुराना इतिहास रहा है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर को अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अगर भारत बार–बार पराजय का सामना करता रहा तो उसके पीछे समाज का हजारों जातियों में बंट जाना। देश की रक्षा की जिम्मेदारी एक विशेष जाति को दी गयी और शेष से जैसे कोई मतलब ही न रहा हो। कभी–कभी यही शेष जातियां आक्रमणकारियों का साथ देने में कोई संकोच नहीं करती थी क्योंकि बंधुत्व का अभाव था।

कोई भी राजनैतिक दल स्वीकार नहीं करेगा कि वह जाति से ऊपर नहीं उठा है। सुविधानुसार जाति का प्रयोग सभी करते हैं फर्क है, तो तरीके में। यह भी इतनी आपत्तिजनक बात नहीं है जितना कि डॉ. अम्बेडकर के मूल दर्शन को आधार मान कर और फिर जात–पात करना। जब चुनाव के समय उम्मीदवारों से प्रतिवेदन मंगाए जाते हैं, तब की स्थिति को अगर जान लिया जाये तब समझ में बात आएगी कि चुनाव लड़ने वाले की जाति ही प्रमुख होती है। यदि उनके बायो–डाटा को पढ़ लिया जाये तो शत–प्रतिशत मामलों में जाति समीकरण को पक्ष में ही समझाने का प्रयास किया जाता है। नेता भी साक्षात्कार के समय जाति को केंद्र मान कर के उम्मीदवारी का मूल्यांकन करते हैं। तह में जाति और सतह पर विचार, सिद्धांत, विकास यही है राजनीति । देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती कि कब हम तह से इस दैत्य के प्रभाव को कम कर सकेंगे। जब तक ऐसा होता नहीं तो हम चीन, कोरिया जैसे विकसित देशों के कतार में खड़े नहीं हो सकते। हो सकता है कुछ लोगों को यह बात अर्थहीन लगे लेकिन यह अकाट्य सत्य है। यह अकाट्य सत्य इसलिए है कि इसका प्रभाव शासन–प्रशासन पर ही नहीं बल्कि सोच पर पड़ता है, बिना सोच के आज तक दुनिया में कोई देश और समाज न विकसित हो पाया है और न ही खुशहाल। वैसे तो गुजारा हो ही जाता है ।

अम्बेडकरी विचारधारा पर लाखों सामाजिक संगठन हैं जो जाति का निषेध करते तो हैं लेकिन चेतन एवं अचेतन अवस्था में जातीय संकीर्णता से मुक्त नहीं हो पाए हैं। राजनैतिक दल नाम मात्र के हैं और बड़े अस्तित्व वाली कोई पार्टी है तो वह है बहुजन समाज पार्टी। ''बहुजन–हिताय, बहुजन – सुखाय'' भगवान गौतम बुद्ध के मूल मन्त्र को बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने अपनाया। यह समता का द्योतक है। इसी को आधार मानते हुए बहुजन समाज पार्टी का निर्माण हुआ। सभी दलित– पिछड़े जातियों को जोड़ने का यही आधार बनाया। प्रशिक्षण शिविरों, सभा और सम्मेलनों में कहा जाने लगा कि अब बहुजनों को इकठ्ठा होकर अपनी हुकूमत लेनी है। ''जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागेदारी'' का नारा बहुत आकर्षित किया। दुश्मन को दिखाकर इकठ्ठा करने की भी रणनीति बनी। जैसे सवर्णों के प्रति तीखे बोल। शुरुआत के दौर में न केवल दलित जातियां बल्कि पिछड़ी जातियां भी तेजी से जुड़ीं। धीरे–धीरे कारवां बनता गया और लोग जुड़ते गए। वह भी दिन आया जब सत्ताधारी बन गए ।

सत्ता में आते ही वही सारे अवगुण और दोष आने लगे जो और जगहों पर होते हैं। एक विशेष जाति जिससे सुश्री मायावती स्वयं हैं उन्होंने पूरे संगठन पर कब्जा कर लिया। सर्वजन चेहरा बनाये रखने के लिए प्रतीकात्मक रूप से कुछ ब्राह्मण और कुछ अल्पसंख्यक को चेहरा बना लिया। इसी प्रक्रिया में अति पिछड़ी और गैर जाटव–चमार दलित छूटते और बिछड़ते चले गये। मंच पर एक कुर्सी जैसे कि सुश्री मायावती स्वयं एक साम्राज्ञी हों। सामाजिक एवं राजनितिक प्रक्रिया में नित कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों से संवाद का न होना, उनके हाथों और

दिल्ली परिसंघ द्वारा संसद मार्ग पर मनायी गयी डॉ. अम्बेडकर जयंती

14 अप्रैल को विश्व के सर्वोच्च सम्मानित हमारे संविधान निर्माता डॉ. भीम राव अम्बेडकर जी की 126वीं जंयती ऑल इंडिया परिसंघ (दिल्ली प्रदेश) द्वारा धूमधाम से मनाई गई। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में दिल्ली प्रदेश के अध्यक्ष श्री सत्यनारायण ने परिसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. उदित राज जी का आभार व्यक्त किया व दिल्ली परिसंघ की टीम व परिसंघ की महिला टीम को धन्यवाद दिया।

इस कार्यक्रम में बाबा साहेब के द्वारा पूरे विश्व में मानव जाति के उद्धार के लिए व भारत में शोषित समाज को अधिकार दिलाने के लिए बाबा साहेब द्वारा किये गए कार्यो से लोगों को अवगत करवाया ।

इस मौके पर परिसंघ अध्यक्ष श्री सत्या नारायण ने कहा कि ऑल इंडिया परिसंघ डॉ. उदित राज जी के नेतृत्व में शोषितों को अधिकार दिलाने के लिए दिन–रात लड़ाई लड़ रहे है। डॉ. उदित राज जी सड़क से लेकर संसद तक संघर्षरत् हैं, उन्होंने सरकारी कर्मचारियों के लिए तीन महत्वपूर्ण संवैधानिक संशोधन कराये। 1997 से लेकर आज तक अनुसूचित जाति व जनजाति से संबंधित अनेक मांगो को उठाया व मनवाया है। डॉ. बाबा साहेब ने आने वाले भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए निजी क्षेत्र में दलितों को आरक्षण हेतु निजी बिल संसद के पटल पर रख दिया है। आप

(शेष पृष्ठ 3 पर)

डॉ. अम्बेडकर जयंती के अवसर पर सत्यनारायण, भानु पुनिया, रवीन्द्र सिंह, आर.एस. हंस के साथ दिल्ली प्रदेश परिसंघ के अन्य साथी

एक नए समाज का निर्माण

बद्री नारायण

भारतीय समाज एक ऐसे संक्रमण के दौर से गुजर रहा जिसमें बहुल आवाजें अपनी-अपनी पुकार अपने-अपने ढंग से लगा रही हैं

भारतीय समाज और राजनीति के लिहाज से 1990 के दशक के अंत में एक बड़ी घटना घटित हुई। यह घटना मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किए जाने के तौर पर सामने आई थी। इस घटना ने समाज में एक उबाल सा ला दिया था। समुद्र मंथन की तरह का एक सामाजिक मंथन हुआ, जिसमें अमृत भी निकला और विष भी। अमृत और विष का प्रतीक इसकी पक्षधर और विरोधी शक्तियां बनीं। मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद समाज में जहां पिछड़ी और दलित जातियों में आगे बढ़ने का नया विश्वास पैदा हुआ वहीं इसके विरुद्ध में खड़ी सामाजिक ताकतों में निराशा का भाव पैदा हुआ। समाज एक तरह से दो भागों में बंट गया। इसे यूं भी कह सकते हैं कि वह कई भागों में विजित हो गया। जातियों में आपसी कलह, टकराहट, हिंसा एवं संघर्ष का सामाजिक भाव पैदा हुआ। इस प्रकार इससे अमृत और विष दोनों निकले। भारतीय समाज की पिछड़ी और दलित जातियों के लिए अमृत के रूप में एक नई आस पैदा हुई। उनकी नई राजनीति विकसित हुई। उनकी अस्मिता बलवती हुई परंतु इसी के साथ धीरे-धीरे पिछड़ों एवं उपेक्षित सामाजिक समूहों में एक क्रीमीलेयर बनने लगी। यह एक प्रकार से इन समूहों के लिए अपने ही नाभिकुंड में विष के निर्माण की प्रक्रिया का गतिमान होना था। यह क्रीमीलेयर न केवल क्रीमीलेयर बना रहा, बल्कि वह इन समूहों में ऐसे शंकुलों में बदल गया जो दूसरों के हिस्से के शहद एवं अमृत को अपने में शोषित करते जा रहे थे। इस सिलसिले में अंबेडकर की बात याद करें तो ऐसे लोग अपने ही समाज को 'पे बैक' नहीं करते। सामाजिक प्रक्रिया में एक और घटना यह घटी कि इन समूहों में जो लोग आरक्षण व्यवस्था का लाभ उठाने में अक्षम रहे उनमें अपने ही समाज के सहजातीय 'अभिजात्य' एवं क्रीमीलेयर्स के प्रति ईष्या का भाव भी पैदा हुआ। चूंकि जिस अभिजात्य के प्रति उनमें द्वेष भाव पैदा हुआ वही अभिजात्य उनकी राजनीति भी कर रहा था इसलिए उसके खिलाफ उसी समाज के एक भाग की गोलबंदी की संभावना बनी। इसका ही लाभ पिछले चुनाव में भाजपा को मिला। मंडल राजनीति ने 'जातीय अस्मिता' की राजनीति को मजबूत किया। मुलायम सिंह यादव, लालू यादव, शरद यादव, नीतीश कुमार, कांशीराम, मायावती इत्यादि 'अस्मिता' की मंडल राजनीति जनित माहौल एवं खाद-पानी की ही पैदाइश रहे। इनमें से कई ने बाद में सर्वसमाज और विकास जैसी राजनीतिक भाषा से अपने को जोड़ा, परंतु उनका आधार जातीय अस्मिता पर आधारित रहा। मंडल ब्रांड राजनीति ने मंडल स्मृति पैदा की। इसको जगाकर पिछड़ी एवं दलित जातियों के एक बड़े भाग को जोड़ा जा सकता था, लेकिन मंडल की काट में कमंडल की राजनीति विकसित हुई। उत्तर प्रदेश के हालिया विधानसभा चुनावों के नतीजों से यह जाहिर होता है कि 'पोस्ट मंडल' सामाजिक गठबंधन की शुरुआत हो चुकी है। इसमें उपेक्षित समूह अपने ही अभिजात्य के खिलाफ जातीय आह्वान से पृथक होकर वोट देते दिखा। ऐसा लगता है कि मंडल की स्मृति अब धुंधली होने लगी है। उसे जगाने एवं फिर से उकेरने के लिए जो नेतृत्व पिछड़ी एवं दलित जातियों में था वह या तो इस स्मृति को ठीक से जगा नहीं पाया या यूं कहें कि उसे बिहार में लालू यादव की तरह प्रभावी राजनीति में बदल नहीं पाया। उत्तर प्रदेश में 'एक नया समाज' बन रहा है जो पोस्ट मंडल समाज है जिसमें न मंडल आधारित राजनीति प्रभावी दिख रही है और न ही कमंडल आधारित राजनीति। उत्तर प्रदेश चुनाव में गोलबंदी के लिए जहां रामजन्म भूमि की स्मृति कहीं-कहीं इस्तेमाल होती रही वहीं शमशान-कब्रिस्तान जैसे मुद्दे भी देखने-सुनने को मिले, परंतु इन दबे-छिपे मुद्दों के ऊपर महिलाओं, युवाओं, किसानों, गरीबों की 'वर्गीय गोलबंदी' भी बनती दिखाई पड़ी। रोचक यह है कि इस जाति मुक्त सामाजिक समूह में पहले वामपंथियों एवं सामाजिक विमुक्ति के एजेंडे पर काम करती कांग्रेस से लाभन्वित होने की आकांक्षी थी। अब वह 'राइटिस्ट' कही जाने वाली भारतीय जनता पार्टी की ओर आशा से देख रहा है। उत्तर प्रदेश में मुस्लिम महिलाएं जिस तरह मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के पास अपनी तलाक संबंधी समस्याओं को लेकर पहुंच रही हैं क्या उससे यह जाहिर नहीं होता कि 'तीन तलाक' जैसे मुद्दों ने मुस्लिम महिलाओं को भाजपा की ओर खींचा होगा?

2014 के चुनाव में जिस 'एस्पीरेशनल कम्युनिटी' के बनने की चर्चा हुई थी हो सकता है कि 2017 के चुनाव में उसी एस्पीरेशनल कम्युनिटी का विस्तार हुआ हो। यह भी हो सकता है कि एक नई सामाजिक गोलबंदी जातीय अस्मिता से अलग-हिंदुत्व, विकास की चाह, विकास जनित ईर्ष्या, उपेक्षा व, इन सबको मिलाकर बन रही हो। इसे शायद अभी कोई नाम देना जल्दबाजी होगी, किंतु बाजार, तकनीक, मोबाइल, टेलीविजन, सूचनाओं का अबाध आदान-प्रदान, बेहतर जीवन की चाह आदि सब मिलकर ऐसे सामाजिक समूहों का निर्माण कर रहे हैं जिनके लिए पारंपरिक अस्मिताएं अप्रासांगिक होती जा रही हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पारंपरिक अस्मिता एक नया अर्थ लेकर नई गोलबंदी का कारण बन रही है। उत्तर प्रदेश के हाल के चुनाव में सुहलदेव भारतीय समाज पार्टी और अपना दल जैसे जातीय आधार मत वाले राजनीतिक दलों ने सत्ता में भागीदारी की नई चाह के तहत बसपा जैसी दलित आधार वाली पार्टी से अलग होकर भाजपा के साथ हाथ मिलाया। ध्यान रहे कि अपना दल में प्रभावी कुर्मी मतदाता उत्तर प्रदेश में एक लंबे समय तक कांशीराम के नेतृत्व में बसपा से जुड़े रहे। अपना दल के संस्थापक सोनेलाल पटेल कांशीराम के सहयोगी ही थे। इसी तरह सुहलदेव भारतीय समाज पार्टी भी बसपा से निकली ही है।

बिहार में जहां विकास की चाह के साथ मंडल स्मृति के तहत आरक्षण का मुद्दा, पिछड़ों एवं दलितों की गोलबंदी का कारण रहा वहीं उत्तर प्रदेश में पोस्ट मंडल पॉलिटिक्स बनती दिखी। उत्तर प्रदेश के विधान सभा चुनाव में उभरे इस 'नए बन रहे आकांक्षापरक समाज' ने जातियों की पारंपरिक अस्मिता को तोड़कर और उसमें नए अर्थ देकर नए गठबंधन बनाए। वहीं बिहार में पिछड़ों एवं उपेक्षितों ने नए विकास की चाह रखते हुए भी मंडल राजनीति से उभरे नेताओं एवं उनकी राजनीति पर ही विश्वास जताया। यह एक ऐसा अंतर्विरोध है जिसका समाधान आसान नहीं है। फिलहाल इतना ही कहा जा सकता है कि भारतीय समाज एक ऐसे संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, जिसमें बहुल आवाजें अपनी-अपनी पुकार अपने-अपने ढंग से लगा रही हैं। साथ ही अनेक तरह के सामाजिक भावों के अनेक तल समाज में एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे होकर जमा हो रहे हैं। इनमें से कौन सा सामाजिक व राजनीति में कब महत्वपूर्ण हो जाएगा, यह सामाजिक परिस्थिति के साथ-साथ सामाजिक नेतृत्व की शक्ति पर भी निर्भर करेगा। अब देखना यह है कि अभी मोदी जी एवं योगी जी का सामाजिक नेतृत्व इस नए बन रहे समाज के बनने की प्रक्रिया में क्या भूमिका निभाता है?

(लेखक समाज विज्ञानी एवं गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान में प्रोफेसर हैं)

– दैनिक जागरण (12 अप्रैल, 2017) से साभार

●●●

दुपट्टे, बुर्के जलाओ और गर्व से कहो कि तुम रंडी हो

रितु सिंह हंसराज

हां तुम रंडी हो
बुर्का पहनो, घूंघट में रहो
दुपट्टा नहीं लोगी तो तुम रंडी हो
मुंह से आवाज मत निकालो
जोर से हंसी तो तुम रंडी हो

खुद को ढंककर रखो
जींस, स्कर्ट पहनोगी तो तुम रंडी हो
हम चाहेंगे वही पढ़ोगी
अपनी मर्जी से पढ़ना है तो तुम रंडी हो

लड़के तो छेड़ेंगे ही उनका तो हक है छेड़ना
विरोध करोगी तो तुम रंडी हो
रेप हुआ तो आत्महत्या कर लो
आवाज उठाई तो तुम रंडी हो

सहेली बना सकती हो
लड़के को दोस्त बनाया तो तुम रंडी हो
भाई के साथ सहेली के घर जाओ
अकेली गई तो तुम रंडी हो

दिन में हमसे पूछकर बाहर निकलो
रात में निकली तो तुम रंडी हो
हम तय करेंगे किसके साथ सोओगी
मर्जी का साथी चुना तो तुम रंडी हो

चुपचाप मार खाती रहो और पति की सेवा करो
पुलिस में गई तो तुम रंडी हो
मास्टरनी बन जाओ, एटीएम हमें दो
नहीं तो तुम रंडी हो

दुपट्टे, बुर्के जलाओ और
गर्व से कहो कि तुम रंडी हो।

(संपादन– आदित्य साहू)

http://www.nationaldastak.com/story/view/vimarsh-on-women-by-ritu-singh-hansraj

●●●

पूरे देश में आरक्षण खत्म करने के लिए माहौल बन गया है, सुप्रीम कोर्ट तो पहले से ही आरक्षण खत्म करने पर तुला हुआ हैं, यदि अभी भी हम सक्रिय नहीं हुए तो समझो आरक्षण खत्म : डॉ. उदित राज

आरक्षितों को सिर्फ कोटे में ही नौकरी

● सुप्रीम कोर्ट ने आरक्षिण वर्ग में नौकरी के संबंध में फेसला दिया

● कहा, ज्यादा अंक लाने पर भी सामान्य वर्ग में नौगरी नहीं

नई दिल्ली, सुप्रीम कोर्ट ने 21 अप्रैल को आरक्षित वर्ग में नौकरी के संबंध में एक अहम फैसला सुनाया। कोर्ट ने कहा कि आरक्षित वर्ग के उम्मीदवार को आरक्षित वर्ग में ही नौकरी मिलेगी, चाहे उसने सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों से ज्यादा अंक क्यों न हासिल किए हों।

● दोहरा लाभ नहीं : जस्टिस आर भानुमति और जस्टिस ए.एम. खानविल्कर की पीठ ने कहा कि एक बार आरक्षित वर्ग में आवेदन कर उसमें छूट और अन्य रियायतें लेने के बाद उम्मीदवार आरक्षित वर्ग के लिए ही नौकरी का हकदार होगा। उसे समान्य वर्ग में समायोजित नहीं किया जा सकता। सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने यह फैसला आरक्षित वर्ग की महिला उम्मीदवार के मामले में दिया। याचिकाकर्ता ने कोर्ट से गुहार लगाई थी कि उसे सामान्य वर्ग में नौकरी दी जाए, क्योंकि उसने लिखित परीक्षा में सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों से ज्यादा अंक हासिल किए हैं। कोर्ट ने कहा कि याचिकाकर्ता ने उम्र सीमा में छूट लेकर ओबीसी श्रेणी में आवेदन किया था और उसने इंटरव्यू भी ओबीसी श्रेणी में ही दिया था, इसलिए वह सामान्य श्रेणी में नियुक्ति के लिए दावा नहीं कर सकती।

● नियम का हवाला : कोर्ट ने कहा कि डीओपीटी की 01 जुलाई 1999 की कार्यवाही के नियम तथा ओएम में साफ है एससी एसटी ओबीसी के उम्मीदवार को जो अपनी मेरिट के आधार पर चयनित होकर आए हैं उन्हें आरक्षित वर्ग में एडजस्ट नहीं किया जाएगा। उसी तरह जब एस. सी. एस.टी. और ओबीसी उम्मीदवारों के लिए छूट के मानक जैसे- उम्र सीमा, अनुभव, शैक्षणिक योग्यता, लिखित परीक्षा के लिए अधिक अवसर दिए गए हों तो उन्हें एससी एसटी और ओबीसी उम्मीदवारों को आरक्षित रिक्तियों के लिए ही विचारित किया जाएगा ऐसे उम्मीदवार अनारक्षित रिक्तियों के लिए अनुपलब्ध माने जाएंगे।

उदाहरण के लिए अगर कोई उम्मीदवार आवेदन भरते समय ही खुद को आरक्षित श्रेणी में बताता है और इसके तहत मिलने वाला लाभ लेता है। लेकिन बाद में उसके अंक सामान्य श्रेणी के कट ऑफ के बराबर या अधिक होते हैं, तो भी उसका चयन आरक्षित सीटों के लिए ही होगा। इसके तहत उसे सामान्य वर्ग की सीटें नहीं मिलेंगी।

● क्या है मामला : दीपा पीवी ने वाणिज्य मंत्रलय के अधीन भारतीय निर्यात निरीक्षण परिषद में लैब सहायक ग्रेड-2 के लिए ओबीसी श्रेणी में आवेदन किया था। इसके लिए हुई परीक्षा में उसने 82 अंक प्राप्त किए। ओबीसी श्रेणी में उसे लेकर 11 लोगों को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। लेकिन इसी वर्ग में 93 अंक लाने वाली सेरेना जोसेफ को चुन लिया गया। जहां तक सामान्य वर्ग का सवाल था, वहां न्यूनतम कटऑफ अंक 70 थे। लेकिन कोई भी उम्मीदवार ये अंक नहीं ला पाया। दीपा ने इस श्रेणी में समायोजित करने के लिए हाईकोर्ट में याचिका दायर की, लेकिन हाईकोर्ट ने इसे निरस्त कर दिया। इसके बाद दीपा सुप्रीम कोर्ट पहुंची थी।

● सुप्रीम कोर्ट का पक्ष: याचिकाकर्ता ने उम्र सीमा में छूट लेकर ओबीसी श्रेणी में आवेदन किया था। उसने साक्षात्कार भी ओबीसी श्रेणी में ही दिया था। इसलिए वह सामान्य श्रेणी में नियुक्ति के अधिकार के लिए दावा नहीं कर सकती।

http://www.shasnadesh.com/2017/04/blog-post_22.html

केंद्र ने खर्च घटाने को शुरु की नौकरियों में कटौती

खत्म होगें खाली पड़े दो लाख पद

नई दिल्ली : मोदी सरकार ने खर्चे कम करने के लिए सरकारी नौकरियों में कटौती करने की तैयारी शुरू कर दी है। मंत्रालयों और सरकारी विभागों में जो पद दो साल से ज्यादा समय से खाली पड़े हैं, सरकार उन्हें खत्म करने जा रही है। सूत्रों के अनुसारे ऐसे पदों की संख्या दो लाख है। इस बारे में सभी मंत्रालयों और विभागों को निर्देश जारी किय गया है।

दूसरी ओर दो साल से कम समय से खाली पड़े पदों पर नियुक्तियां वित्त मंत्रालय की अनुमति के बाद ही की जा सकेंगीं। मंत्रालयों और सरकारी विभागों में नई भर्तियां करने, नए पोस्ट क्रीट करने, पोस्ट रिवाइवल करने जैसे विषयों पर आखिरी फैसला वित्त मंत्रालय ही करेगा।

जिन दो लाख खाली पड़े पदों को खत्म किया जाएगा, उनमें सबसे ज्यादा पोस्ट इन्कम टैक्स विभाग की है। इस विभाग में करीब 25,000 पोस्ट काफी समय से खाली है, जिन्हें नहीं भरा गया है।

मंत्रालयों और विभागों को खाली पड़े पदों की सूची देने को कहा गया है, ताकि उनको खत्म करने का आखिरी फेसला लिया जा सके। इसके अलावा यह भी फेसला किया जाएगा कि जो पोस्ट दो साल से कम समय से खाली हैं, उन्हें भरने की जरुरत है या नहीं। वित्त मंत्रालय के सीनियर अधिकारियों के अनुसार मंत्रालयों और सरकारी विभागों से कहा गया है कि वे अपने यहां मैनपावर और खाली पड़े पोस्टों की पूरी जानकारी दें। यह जानकारी भी दें कि काम के मुकाबले कितना मैनपावर है। इसके बाद वित्त मंत्रालय तय करेगा कि वाकई में संबंधित जगह पर मैनपावर की जरुरत है या नहीं। अगर जरुरत है तो कितनी है। इसी के अनुसार नई भार्तियों या पोस्ट क्रीट की जाएगी। वित्त मंत्रालय के सूत्रों के अनुसार वित्तीय घाटी को जीडीपी के परिपेक्ष्य में 3 फीसदी के स्तर पर लाना है। इसके लिए जरुरी है कि सरकारी खर्चे को कम किया जाए।

– नवभारत टाइम्स (22 अप्रैल, 2017) से साभार

(पृष्ठ 1 का शेष)

दिल्ली परिसंघ द्वारा संसद मार्ग पर . . .

लोग जानते हैं कि धीरे धीरे सरकार आरक्षण को खत्म करने का कार्य कर रही है। हमें इकट्ठे होकर लड़ना होगा व समर्थन के लिए सड़कों पर आना होगा ।

इस मौके पर बाबा साहेब के विचारों से अवगत कराते हुए कहा कि बाबा साहेब ने अपनी पूरी जिंदगी हमें अधिकार दिलाने में न्योछावर की। हमें जातिवाद के दलदल से बाहर निकाला, लेकिन आज भी कुछ लोग अपने अज्ञान व अहंकार की वजह से बाबा साहेब का अनुसरण नहीं कर रहे हैं।

हमें बाबा साहेब के सच्चे सिपाही डॉ उदित राज साहब का साथ देना होगा व परिसंघ को मजबूत करना होगा चूकि पूर्व में भी परिसंघ ने आरक्षण की लड़ाई लड़ी और हम सभी जीते फिर हमें इधर उधर नहीं भटकना चाहिये।

इस मौके पर परिसंघ दिल्ली महासचिव भानु पुनिया जी ने कहा कि बाबा साहेब के बारे में आज कुछ भी कहना और लिखना सूरज को दीपक दिखाने जैसा है। उन्होंने बाबा साहेब की जयंती की सभी को शुभकामनाएं देते हुए कहा कि आज 14 अप्रैल है, और यह विश्व व भारत के इतिहास का वह ऐतिहासिक दिन है जब सन् 1891 में बाबा साहेब डॉ० भीमराव अंबेडकर जी का जन्म मऊ, मध्य प्रदेश में हुआ था. ''बाबा साहेब'' के नाम से बाद में प्रचलित हुए । बाबा साहेब पूरे विश्व में सम्मानित हैं भारत राष्ट्र के संविधान निर्माता हैं सभी को समान अधिकार दिलाने के लिए व इंसानियत को बढ़ाने के लिए पूरे विश्व मे उनका सम्मान है। बाबा साहेब ने कहा था हजारों साल से मेरा समाज दूसरों के पांव छूकर जिंन्दगी जीता आया है, मैं उन्हें इतना काबिल बनाना चाहता हूं कि वो अपनी जिंन्दगी किसी के सहारे पर नहीं बल्कि अपनी मेहनत पर जियें। लेकिन मेरे लोग मेरे पैर छूकर अपनी जिम्मेदारी भूलना चाहते हैं, मेरा जय जयकार करने से आंदोलन आगे बढ़ने वाला नहीं है मेरी विचारधारा को समझकर कार्य करना चाहिए, यह बात मैं समाज को बताना चाहता हूं। बाबा साहेब ने कहा था जिसे अपने दुखों से मुक्ति चाहिए, उसे लड़ना होगा और जिसे लड़ना है उसे पहले पढ़ना होगा क्योंकि ज्ञान के बिना लड़ने गए तो हार निश्चित है।

उन्होंने सभी साथियों को बाबा साहेब का अनुसरण करने व उनके दिखाए गए रास्ते पर चलने का आह्वान किया व परिसंघ ऑल इंडिया के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. उदित राज जी द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलने व परिसंघ को मजबूत करने का आह्वान किया।

ऑल इंडिया परिसंघ महिला प्रकोष्ठ की राष्ट्रीय संयोजक श्रीमती सविता कदियान पंवार ने अपने विचार रखते हुए कहा कि हमें बाबा साहब अम्बेडकर की जंयती मनाने के साथ-साथ उनके विचारों व उद्देश्यां को पूरा करने के लिए जमीनी स्तर पर कार्य करने होंगे व महिलाओं के मुक्ति दाता बाबा साहब का महिलाओं को उनका आभार व्यक्त करना चाहिए कि उन्होंने संवैधानिक अधिकार दिलवाए और समाज में सर उठाकर जीने लायक बनाया और सम्मान दिलवाया और बाबा साहब के तीन मंत्र शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो को दलित नारी के जीवन मे उतारा। महाड़ सत्याग्रह, धर्मांतरण की घोषणा, मनुस्मृति दहन, कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह आदि घटनाओं में इन्हीं कारणो से महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। बाबा साहब अम्बेडकर स्त्रियों की दशा में परिवर्तन संविधान में अनेक अनुच्छेदों की व्यवस्था करके लाना चाहते थे और इसलिए हिन्दू कोड बिल बनाया। इसलिए मेरा कहना है कि जंयती मनाकर अपने आपको हमें रोकना नहीं है और नारी पूर्ण आजादी की संकल्पना को पूरा करवाने का वचन आज हमें इस मंच से सभी महिलाओं को दिलवाना है कि हमने बाबा साहब के सपनों का भारत बनाना है और सभी भारतीय नारियों से आह्वान किया, विशेषकर पढ़ी-लिखी महिलाओं, लेखिकाओं, कवियित्रियों और संपादिकाओं को भी आह्वान किया कि वे नारी के स्वाभिमान और स्वसम्मान की लड़ाई लड़े और सामूहिक रूप से परिसंघ महिला प्रकोष्ठ के माध्यम से आदोलन आंदोलन चलाये और हमारे परिसंघ के राष्ट्रीय चौयरमैन डॉ. उदित राज जी के हाथ मजबूत करें ।

साथियो, अनुसूचित जाति/जन जाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ आपको समय-समय पर सचेत करता है कि तमाम लोग सोशल मीडिया के रूप में हमसे जुड़ सकते हैं, जो परिसंघ को ऊपर उठाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं। इस मौके पर दिल्ली परिसंघ के महासचिव भानु पुनिया, रविन्द्र सिंह, दया राम, हरि प्रकाश, मुकेश कुमार, रवीन्द्र कटारिया, आर. एस. हंस, दिलबाग सिंह, योगेश आनंद व परिसंघ की महिला प्रकोष्ठ की राष्ट्रीय संयोजक (महिला प्रकोष्ठ) सविता कदियान पंवार, राष्ट्रीय सह संयोजक रेशम भोयर, डॉ. रूचिता पाल, सुनीता, रीटा सरकार, सरिता, ललिता, वंदना गौतम व हरियाणा प्रदेश के अध्यक्ष श्री सत्यप्रकाश जरावता, पंजाब प्रदेश अध्यक्ष तरसेम सिह जी आदि जंयती के मौके पर सभी वक्ताओं ने अपने विचार अभिव्यक्त किये। इस जंयती के अवसर पर परिसंघ की दिल्ली प्रदेश की टीम के साथ-साथ परिसंघ महिला प्रकोष्ठ की टीम ने भी इस कार्यक्रम मे बढ़-चढ़कर भाग लिया।

– सत्या नारायण
प्रदेश अध्यक्ष (दिल्ली)
अनुसूचित जाति/जन जाति अखिल भातीय संगठनों का परिसंघ
9873988894

14 अप्रैल, 2017 को 'पंजाब केसरी' व 'अमर उजाला' में प्रकाशित लेख

अम्बेडकर जयंती साध्य बनती

डॉ. अम्बेडकर स्वयं मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे। इस पर उन्होंने काफी कुछ कहा है। गैर-सरकारी स्तर पर जितनी मूर्ति बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की पूरे देश में लगी होगी उतनी शायद किसी और की न लगी हो। 14 अप्रैल को इस महापुरुष की जयंती पड़ती है। उसकी शुरुआत तो पहले ही हो जाती है और यहां तक कि जुलाई-अगस्त तक लोग कार्यक्रम करते ही रहते हैं। अधिकतर दलित ही कार्यक्रम का आयोजन करते हैं क्योंकि उनके द्वारा किये गए प्रयासों का फल उन्हें मिल रहा है। अधिकार दिलाना एक पक्ष है तो विचारधारा दूसरा। जहां तक उनके सघर्षो के कारण आरक्षण और अन्य अधिकार मिले उसको लेने से कोई चूकता नहीं लेकिन यक्ष प्रश्न तब खड़ा होता है जब उनके दर्शन को आत्मसात करने की बात होती है। जयंती मनाने का उद्देश्य यह होता है कि उस महापुरुष के द्वारा दिए गए विचार और दर्शन को फिर से याद करे। भाषण और व्याख्यान तो हो जाते हैं प्रश्न है कि क्या आयोजककर्ता या उसमें शामिल होने वाले लोग विचार को कह और सुन कर वहीं अपनी फर्ज अदायिगी कर देते हैं। जिस दिन इसके आगे जाने लगेंगे देश में बहुत बड़ा परिवर्तन होकर रहेगा।

जयंती मनाने में वह लोग भी शामिल होते हैं जो साल भर कोई रचनात्मक कार्य नहीं करते लेकिन इस मौके का फायदा उठाने से चुकते नहीं। बिना अधिक प्रयास के लोग इकठ्ठा हो जाते हैं तो इससे आसान क्या तरीका है कि फर्ज अदायिगी भी हो गयी है और प्रसिद्धि भी मिल गयी। अधिकतर लोग बाबा साहेब को सम्मान पेश करने आते हैं न कि अयोजककर्ता और उसके संगठन के लिए। अधिकतर कार्यक्रमों में मेले वाली भीड़ होती है कि लोग एक तरफ से आये तो दूसरी तरफ चले गए। किसी अधिकार को लेने के लिए नहीं आते न ही कार्यकर्ता बनने के लिए। इसमें एकता का भी भाव इतना नहीं होता। कहने का आशय यह नहीं है कि जयंती के कार्यक्रम न किये जाये। बल्कि और ज्यादा किये जाने चाहिए, उससे प्रचार-प्रसार बढ़ता है क्योंकि अभी भी बड़ी संख्या में लोग बाबा साहेब के दर्शन से परिचित नहीं हैं। मुश्किल तब होती है जब लोग इसी से खाना पूर्ति कर लेते हैं और विचार से कोई खास रिश्ता न हो पाता।

दलितों-आदिवासियों को आत्मचिंतन करना पड़ेगा कि क्या गोष्ठी, सेमिनार और जयंती से उनका काम चल जायेगा। विचार आत्मसात करने के लिए बहादुर और समझदार होना पड़ेगा। जिस जाति में पैदा हुए और उसके संस्कार में पले-बढ़े क्या उसको त्यागना आसान कार्य है? धारा के साथ तो कोई भी चल जाता है। डॉ. अम्बेडकर धारा के विपरीत चले और वही माने, जो मानव कल्याण के लिए उपयोगी लगा। उन परम्पराओं और रीति-रिवाजों का बहिष्कार किया जो मानव हित में नहीं थे। हजारों वर्ष जो समाज गुलामी में रहा है इससे निकलने के लिए उसे असाधारण प्रयास करने होंगे। हो यह रहा है कि शत-प्रतिशत अम्बेडकरवादी भी खिचड़ी पका रहे है। उनके प्रयासों के द्वारा लाभ जैसे आरक्षण, छात्रवृति, सांसदी, विधायकी, संविधान, सम्मान और स्वतंत्रता ग्रहण करने में सबसे आगे लेकिन जब बौद्ध धर्म, संगठन, संघर्ष, त्याग, जातिविहीन समाज बनाने की बारी आये तो ज्यादातर

जानिए दलितों का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

अक्सर सवर्ण बंधुओं द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि दलितों का आजादी की लड़ाई में क्या योगदान रहा है, वे गाहे बेगाहे सवर्ण क्रांतिकारियों की लिस्ट दिखाकर यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि, सारी आज़ादी की लड़ाई उन्होंने ही लड़ी बाकी अछूत दलित तो कुछ नहीं करते थे। यह मानसिकता वह है जो हजारों सालों से चली आ रही है, इसी मानसिकता के चलते एकलव्य का अंगूठा कटवा के उसके बाद अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर की पदवी दिला दी जाती है ।

खैर, मैं आपको प्राचीन काल में नहीं अपितु इतिहास में ले चलता हूँ। सब जानते हैं की आज़ादी की लड़ाई की शुरुआत 1857 में मंगल पाण्डे से शुरू हुई। हालांकि मंगल पाण्डे को अंग्रेजों से बगावत करने की प्रेरणा मातादीन वाल्मीकि से मिली वर्ना पाण्डे जी जीवन भर अंग्रेजों की नौकरी ही करते रहते । मातादीन वाल्मिकि को अछूत होने के नाते भुला दिया गया। पर यहां आपको मैं बताऊंगा की आज़ादी की प्रथम लड़ाई 1857 में मंगल पाण्डे द्वारा नहीं लड़ी गई थी, बल्कि, आजादी की लड़ाई 1804 में ही शुरू हो गई थी और यह लड़ाई लड़ी गई थी छतरी के नबाब द्वारा। छतरी के नबाब का अंग्रेजों से लड़ने वाला परमवीर योद्धा था 'ऊदैया चमार', जिसने सैंकड़ो अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया था । उसकी वीरता के चर्चे अलीगढ़ के आस-पास के क्षेत्रो में आज भी सुनाई देते हैं, उसको 1807 में अंग्रेजों द्वारा फाँसी दे दी गई थी। उसके बाद आता है बाँके चमार, बाँके जौनपुर जिले के मछली तहसील के गाँव कुँवरपुर के निवासी थे, उनकी अंग्रेजो में इतनी दहशत थी कि सन 1857 के समय उनके ऊपर 50 हजार का इनाम रखा था अंग्रेजो ने । अब आप सोचिये कि, जब '2 पैसे' की इतनी कीमत थी की उस से बैल ख़रीदा जा सकता था तो उस समय '50 हजार' का इनाम कितना बड़ा होगा ।

वीरांगना झलकारी बाई को कौन नहीं जानता? रानी झाँसी से बढ़ के हिम्मत और साहस था उनमें, वे चमार जाति की उपजाति कोरी जाति से थी । पर दलित होने के कारण उनको पीछे धकेल दिया गया और रानी झाँसी का गुणगान किया गया।

1857 में ही राजा बेनी माधव (खलीलाबाद) अंग्रेजो द्वारा कैद किये जाने पर उन्हें छुड़ाने वाला अछूत वीरा पासी था।

इसके अलावा कुछ और दलित क्रान्तिकारियो के नाम आप लोगो को बताना चाहता हूँ जो गोरखपुर अभिलेखों में दर्ज हैं ।

1. आजादी की लड़ाई में चौरा-चौरी काण्ड एक मील का पत्थर है, इसी चौरा-चौरी कांड के नायक थे 'रमापति चमार', इन्ही की सरपरिस्त में हजारों दलितों की भीड़ ने चौरा-चौरी थाने में आग लगा दी थी जिससे 23 अंग्रेज सिपाहियों की जलने से मौत हो गई थी।

इतिहासकार श्री. डी. सी. दिनकर ने अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता संग्राम' में 'अछूतों का योगदान' में उल्लेख किया है कि - 'अंग्रेजों ने इस काण्ड में सैंकड़ों दलितों को गिरफ्तार किया। 228 दलितों पर सेशन सुपुर्द कर अभियोग चला । निचली अदालत ने 172 दलितों को फाँसी की सजा सुनाई। इस निर्णय की ऊपरी अदालत में अपील की गई, ऊपरी अदालत ने 19 को फाँसी, 14 को आजीवन कारवास, शेष को आठ से पांच साल की जेल हुई ।

2 जुलाई 1923 को 18 अन्य दलितों के साथ चौरा-चौरी कांड के नायक रमापति को फांसी के फंदे पर लटका दिया गया । चौरा-चौरी कांड में फाँसी तथा जेल की सजा पाने वाले क्रन्तिकारी दलितों के नाम थे-

1. सम्पति चमार- थाना- चौरा, गोरखपुर, धारा 302 के तहत 1923 में फांसी

2- अयोध्या प्रसाद पुत्र महंगी पासी- ग्राम - मोती पाकड़, जिला चौरा, गोरखपुर , सजा - फाँसी

3. कल्लू चमार, सुपुत्र सुमन - गाँव गोगरा, थाना-झगहा, जिला गोरखपुर, सजा - 8 साल की कैद

4. गरीब दास, पुत्र महंगी पासी - सजा धारा 302 के तहत आजीवन कारावास

5. नोहरदास, पुत्र देवीदीन- ग्राम - रेबती बाजार, थाना चौरा-चौरी, गोरखपुर, आजीवन कारवास

6. श्री फलई, पुत्र घासी प्रसाद- गाँव- थाना चौरा-चौरी, 8 साल की कठोर कारवास,

7. बिरजा, पुत्र धवल चमार- गाँव - डुमरी, थाना चौरा, धारा 302 के तहत 1924 में आजीवन कारावास

8. श्री. मेढ़ाइ, पुत्र बुधई- थाना चौरा, गोरखपुर, आजीवन कारवास

इसके अलावा 1942 के भारत छोडो आंदोलन में मरने वाले और भाग लेने वाले दलितों की संख्या हजारों में हैं जिसमें से कुछ प्रमुख हैं-

1. मेंकुलाल, पुत्र पन्ना लाल, जिला सीता पुर। यह बहादुर दलित 1932 के मोतीबाग कांड में शहीद हुआ

2. शिवदान, पुत्र दुबर - निवासी ग्राम - पहाड़ीपुर, मधुबन आजमगढ़, इन्होंने 1942 के 15 अगस्त को मधुबन थाना के प्रातः 10 बजे अंग्रेजो पर हल्ला बोला, अंग्रेजो की गोली से शहीद हुए ।

इसके अलावा दलित अमर शहिदों का भारत अभिलेख से प्राप्त परिचय - मुंडा, मालदेव, सांठे, सिंहराम, सुखराम, सवराउ, आदि बिहार प्रान्त से ।

आंध्र प्रदेश से 100 से ऊपर दलित नेता व् कार्यकर्ता बंदी । बंगाल से 45 दलित नेता बलिदान हुए आजादी की लड़ाई में। ऐसे ही देश के अन्य राज्यो में भी दलितों ने आजादी के संग्राम में अपनी कुरबानी दी ।

अरे हाँ.... !! सबसे महत्वपूर्ण नाम लेना तो भूल ही गया, जलियाँवाला बाग का बदला लेने वाले और लन्दन जा के माइकल आडेवयार को गोलियों से भून देने वाले दलित 'शहीद ऊधम सिंह' जिसका नाम सुनते ही अंग्रेजो में डर की लहर दौड़ जाती थी।

ये सब दलित 'स्वतंत्रता सेनानी' और हजारों ऐसे ही गुमनाम शहीद जो 'दलित' होने के नाते कभी भी मुख्य पंक्ति में नहीं आ पाये। देश को नजर आये तो सिर्फ सवर्ण।

नोट : उपरोक्त जानकारी व्हाट्अप पर प्राप्त हुई। प्रमाणिकता की जांच की जा रही है।

मैं नास्तिक क्यों हूँ- भगत सिंह

(यह लेख भगत सिंह ने जेल में रहते हुए लिखा था और यह 27 सितम्बर 1931 को लाहौर के अखबार 'द पीपल' में प्रकाशित हुआ । इस लेख में भगत सिंह ने ईश्वर कि उपस्थिति पर अनेक तर्कपूर्ण सवाल खड़े किये हैं और इस संसार के निर्माण, मनुष्य के जन्म, मनुष्य के मन में ईश्वर की कल्पना के साथ साथ संसार में मनुष्य की दीनता, उसके शोषण, दुनिया में व्याप्त अराजकता और और वर्गभेद की स्थितियों का भी विश्लेषण किया है। यह भगत सिंह के लेखन के सबसे चर्चित हिस्सों में रहा है। 33 स्वतन्त्रता सेनानी बाबा रणधीर सिंह 1930-31 के बीच लाहौर के सेन्ट्रल जेल में कैद थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे जिन्हें यह जान कर बहुत कष्ट हुआ कि भगत सिंह का ईश्वर पर विश्वास नहीं है। वे किसी तरह भगत सिंह की कालकोठरी में पहुँचने में सफल हुए और उन्हें ईश्वर के अस्तित्व पर यकीन दिलाने की कोशिश की। असफल होने पर बाबा ने नाराज होकर कहा, ''प्रसिद्धि से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है और तुम अहंकारी बन गए हो जो कि एक काले पर्दे की तरह तुम्हारे और ईश्वर के बीच खड़ी है। इस टिप्पणी के जवाब में ही भगतसिंह ने यह लेख लिखा)

एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ? मेरे कुछ दोस्त 'शायद ऐसा कहकर मैं उन पर बहुत अधिकार नहीं जमा रहा हूँ' मेरे साथ अपने थोड़े से सम्पर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये उत्सुक हैं कि मैं ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर कुछ जरूरत से ज्यादा आगे जा रहा हूँ और मेरे घमण्ड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिये उकसाया है। मैं ऐसी कोई शेखी नहीं बघारता कि मैं मानवीय कमजोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नहीं। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नहीं कर सकता। यह कमजोरी मेरे अन्दर भी है। अहंकार भी मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कामरेडो के बीच मुझे निरंकुश कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बटुकेश्वर कुमार दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौकों पर स्वेच्छाचारी कहकर मेरी निन्दा भी की गयी। कुछ दोस्तों को शिकायत है, और गम्भीर रूप से है कि मैं अनचाहे ही अपने विचार, उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है। इससे मैं इनकार नहीं करता। इसे अहंकार कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है। मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो और इसको घमण्ड नहीं कहा जा सकता। घमण्ड तो स्वयं के प्रति अनुचित गर्व की अधिकता है। क्या यह अनुचित गर्व है, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया? अथवा इस विषय का खूब सावधानी से अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर अविश्वास किया?

मैं यह समझने में पूरी तरह से असफल रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथाभिमान किस तरह किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन सकता है? किसी वास्तव में महान व्यक्ति की महानता को मैं मान्यता न दूँ 'यह तभी हो सकता है, जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अन्दर वे गुण नहीं हैं, जो इसके लिये आवश्यक हैं। यहाँ तक तो समझ में आता है। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बन्द कर दे? दो ही रास्ते सम्भव हैं। या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे। इन दोनो ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता। पहली अवस्था में तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है। दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है। मैं तो उस सर्वशक्तिमान परम आत्मा के अस्तित्व से ही इनकार करता हूँ। यह अहंकार नहीं है, जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिये प्रेरित किया। मैं न तो एक प्रतिद्वन्द्वी हूँ, न ही एक अवतार और न ही स्वयं परमात्मा। इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिये आइए तथ्यों पर गौर करें। मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षडयन्त्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथाभिमानी हो गया हूँ।

मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नहीं है। मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था, जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था। कम से कम एक कालेज का विद्यार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता, जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाये। यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था। पर मैं कभी भी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नहीं रहा। अहंकार जैसी भावना में फँसने का कोई मौका ही न मिल सका। मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी। मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्य समाजी हैं। एक आर्य समाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी0 ए0 वी0 स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त मैं घण्टों गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये अपने जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा मिली। किन्तु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं - यहाँ तक कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैं अपने लम्बे बाल रखता था। यद्यपि मुझे कभी-भी सिक्ख या अन्य धर्मों की पौराणिकता और सिद्धान्तों में विश्वास न हो सका था। किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी। बाद में मैं क्रान्तिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ जिस पहले नेता से मेरा सम्पर्क हुआ वे, तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस ही नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठ पूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, ''जब इच्छा हो, तब पूजा कर लिया करो।'' यह नास्तिकता है, जिसमें साहस का अभाव है। दूसरे नेता, जिनके मैं सम्पर्क में आया, पक्के श्रद्धालु आदरणीय कामरेड शचीन्द्र नाथ सान्याल आजकल काकोरी षडयन्त्र केस के सिलसिले में आजीवन कारावास भोग रहे हैं। उनकी पुस्तक 'बन्दी जीवन' ईश्वर की महिमा का जोर-शोर से गान है। उन्होंने उसमें ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के पुष्प रहस्यात्मक वेदान्त के कारण बरसाये हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत में जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रान्तिकारी) पर्चा बाँटा गया था, वह उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। उसमें सर्वशक्तिमान और उसकी लीला एवं कार्यो की प्रशंसा की गयी है। मेरा ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रान्तिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के सभी चार शहीदों ने अपने अन्तिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। राम प्रसाद 'बिस्मिल' एक रूढ़िवादी आर्य समाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद में अपने वृहद अध्ययन के बावजूद राजेन लाहड़ी उपनिषद एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सब मे सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा, जो कभी प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, ''दर्शन शास्त्र मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है। वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परन्तु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।

इस समय तक मैं केवल एक रोमान्टिक आदर्शवादी क्रान्तिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे। अब अपने कन्धों पर जिम्मेदारी उठाने का समय आया था। यह मेरे क्रान्तिकारी जीवन का एक निर्णायक बिन्दु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही थी - विरोधियों द्वारा रखे गये तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिये अध्ययन करो। अपने मत के पक्ष में तर्क देने के लिये सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। रोमांस की जगह गम्भीर विचारों ने ली ली। न और अधिक रहस्यवाद, न ही अन्धविश्वास। यथार्थवाद हमारा आधार बना। मुझे विश्वक्रान्ति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किन्तु अधिक लेनिन, त्रात्स्की, व अन्य लोगों को पढ़ा, जो अपने देश में सफलतापूर्वक क्रान्ति लाये थे। ये सभी नास्तिक थे। बाद में मुझे निरलम्ब स्वामी की पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली। इसमें रहस्यवादी नास्तिकता थी। 1926 के अन्त तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम आत्मा की बात, जिसने ब्रह्माण्ड का सृजन, दिग्दर्शन और संचालन किया, एक कोरी बकवास है। मैंने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था।

मई 1927 में मैं लाहौर में गिरफ्तार हुआ। रेलवे पुलिस हवालात में मुझे एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफसरों ने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था, जब वहाँ काकोरी दल का मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी, कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किये थे, कि 1927 में दशहरा के अवसर पर उन बमों में से एक परीक्षण के लिये भीड़ पर फेंका गया, कि यदि मैं क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक वक्तव्य दे दूँ, तो मुझे गिरफ्तार नहीं किया जायेगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किये बेगैर रिहा कर दिया जायेगा और इनाम दिया जायेगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखने वाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते। एक दिन सुबह सी0 आई0 डी0 के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन ने कहा कि यदि मैंने वैसा वक्तव्य नहीं दिया, तो मुझ पर काकोरी केस से सम्बन्धित विद्रोह छेड़ने के षडयन्त्र तथा दशहरा उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिये मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगे और कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व फाँसी पर लटकवाने के लिये उचित प्रमाण हैं। उसी दिन से कुछ पुलिस अफसरों ने मुझे नियम से दोनो समय ईश्वर की स्तुति करने के लिये फुसलाना शुरू किया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मैं स्वयं के लिये यह बात तय करना चाहता था कि क्या शान्ति और आनन्द के दिनों में ही मैं नास्तिक होने का दम्भ भरता हूँ या ऐसे कठिन समय में भी मैं उन सिद्धान्तों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। नहीं, मैंने एक क्षण के लिये भी नहीं की। यही असली परीक्षण था और मैं सफल रहा। अब मैं एक पक्का अविश्वासी था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हलका कर देता है। यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। ईश्वर में मनुष्य को अत्यधिक सान्त्वना देने वाला एक आधार मिल सकता है। उसके बिना मनुष्य को अपने ऊपर निर्भर करना पड़ता है। तूफान और झंझावात के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा की इन घड़ियों में अहंकार यदि है, तो भाप बन कर उड़ जाता है और मनुष्य अपने विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। यदि ऐसा करता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पास सिर्फ अहंकार नहीं वरन् कोई अन्य शक्ति है। आज बिलकुल वैसी ही स्थिति है। निर्णय का पूरा-पूरा पता है। एक सप्ताह के अन्दर ही यह घोषित हो जायेगा कि मैं अपना जीवन एक ध्येय पर न्योछावर करने जा रहा हूँ। इस विचार के अतिरिक्त और क्या सान्त्वना हो सकती है? ईश्वर में विश्वास रखने वाला हिन्दू पुनर्जन्म पर राजा होने की आशा कर सकता है। एक मुसलमान या ईसाई स्वर्ग में व्याप्त समृद्धि के आनन्द की तथा अपने कष्टों और बलिदान के लिये पुरस्कार की कल्पना कर सकता है। किन्तु मैं क्या आशा करूँ? मैं जानता हूँ कि जिस क्षण रस्सी का फन्दा मेरी गर्दन पर लगेगा और मेरे पैरों के नीचे से तख़्ता हटेगा, वह पूर्ण विराम होगा। वह अन्तिम क्षण होगा। मैं या मेरी आत्मा सब वहीं समाप्त हो जायेगी। आगे कुछ न रहेगा। एक छोटी सी जूझती हुई जिन्दगी, जिसकी कोई ऐसी गौरवशाली परिणति नहीं है, अपने में स्वयं एक पुरस्कार होगी। यदि मुझमें इस दृष्टि से देखने का साहस हो। बिना किसी स्वार्थ के यहाँ या यहाँ के बाद पुरस्कार की इच्छा के बिना, मैंने अनासक्त भाव से अपने जीवन को स्वतन्त्रता के ध्येय पर समर्पित कर दिया है, क्योंकि मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। जिस दिन हमें इस मनोवृत्ति के बहुत-से पुरुष और महिलाएँ मिल जायेंगे, जो अपने जीवन को मनुष्य की सेवा और पीड़ित मानवता के उद्धार के अतिरिक्त कहीं समर्पित कर ही नहीं सकते, उसी दिन मुक्ति के युग का शुभारम्भ होगा। वे शोषकों, उत्पीड़कों और अत्याचारियों को चुनौती देने के लिये उत्प्रेरित होंगे। इस लिये नहीं कि उन्हें राजा बनना है या कोई अन्य पुरस्कार प्राप्त करना है यहाँ या अगले जन्म में या मृत्योपरान्त स्वर्ग में। उन्हें तो मानवता की गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंकने और मुक्ति एवं शान्ति स्थापित करने के लिये इस मार्ग को अपनाना होगा। क्या वे उस रास्ते पर चलेंगे जो उनके अपने लिये ख़तरनाक किन्तु उनकी महान आत्मा के लिये एक मात्र कल्पनीय रास्ता है। क्या इस महान ध्येय के प्रति उनके गर्व को अहंकार कहकर उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा? कौन इस प्रकार के घृणित विशेषण बोलने का साहस करेगा? या तो वह मूर्ख है या धूर्त। हमें चाहिए कि उसे क्षमा कर दें, क्योंकि वह उस हृदय में उद्वेलित उच्च विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उनकी गहराई को महसूस नहीं कर सकता। उसका हृदय मांस के एक टुकड़े की तरह मृत है। उसकी आँखों पर अन्य स्वार्थो के प्रेतों की छाया पड़ने से वे कमजोर हो गयी हैं। स्वयं पर भरोसा रखने के गुण को सदैव अहंकार की संज्ञा दी जा सकती है। यह दुखपूर्ण और कष्टप्रद है, पर चारा ही क्या है?

आलोचना और स्वतन्त्र विचार एक क्रान्तिकारी के दोनो अनिवार्य गुण हैं। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने किसी परम आत्मा के प्रति विश्वास बना लिया था। अतः कोई भी व्यक्ति जो उस विश्वास को सत्यता या उस परम आत्मा के अस्तित्व को ही चुनौती दे, उसको विधर्मी, विश्वासघाती कहा जायेगा। यदि उसके तर्क इतने अकाट्य हैं कि उनका खण्डन वितर्क द्वारा नहीं हो सकता और उसकी आस्था इतनी प्रबल है कि उसे ईश्वर के प्रकोप से होने वाली विपत्तियों का भय दिखा कर दबाया नहीं जा सकता तो उसकी यह कह कर निन्दा की जायेगी कि

(शेष पृष्ठ 6 पर)

(पृष्ठ 5 का शेष)

मैं नास्तिक क्यों . . .

वह वृथाभिमानी है। यह मेरा अहंकार नहीं था, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया। मेरे तर्क का तरीका संतोषप्रद सिद्ध होता है या नहीं इसका निर्णय मेरे पाठकों को करना है, मुझे नहीं। मैं जानता हूँ कि ईश्वर पर विश्वास ने आज मेरा जीवन आसान और मेरा बोझ हलका कर दिया होता। उस पर मेरे अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यन्त शुष्क बना दिया है। थोड़ा-सा रहस्यवाद इसे कवित्वमय बना सकता है। किन्तु मेरे भाग्य को किसी उन्माद का सहारा नहीं चाहिए। मैं यथार्थवादी हूँ। मैं अन्तः प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूँ। इस ध्येय में मैं सदैव सफल नहीं हुआ हूँ। प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है। सफलता तो संयोग तथा वातावरण पर निर्भर है। कोई भी मनुष्य, जिसमें तनिक भी विवेक शक्ति है, वह अपने वातावरण को तार्किक रूप से समझना चाहेगा। जहाँ सीधा प्रमाण नहीं है, वहाँ दर्शन शास्त्र का महत्व है। जब हमारे पूर्वजों ने फुरसत के समय विश्व के रहस्य को, इसके भूत, वर्तमान एवं भविष्य को, इसके क्यों और कहाँ से को समझने का प्रयास किया तो सीधे परिणामों के कठिन अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने ढंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों में हमको इतना अन्तर मिलता है, जो कभी-कभी वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्ध के अपने विभिन्न मतों में आपस में अन्तर है। पूर्व के धर्मों में, इस्लाम तथा हिन्दू धर्म में जरा भी अनुरूपता नहीं है। भारत में ही बौद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राह्मणवाद से बहुत अलग है, जिसमें स्वयं आर्यसमाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी मत पाये जाते हैं। पुराने समय का एक स्वतन्त्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने समय में ही चुनौती दी थी। हर व्यक्ति अपने को सही मानता है। दुर्भाग्य की बात है कि बजाय पुराने विचारकों के अनुभवों तथा विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई का आधार बनाने के हम आलसियों की तरह, जो हम सिद्ध हो चुके हैं, उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की चीख पुकार करते रहते हैं और इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के दोषी हैं।

सिर्फ विश्वास और अन्ध विश्वास खतरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है, उसे समस्त प्राचीन रूढ़िगत विश्वासों को चुनौती देनी होगी। प्रचलित मतों को तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके, तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा। तब नये दर्शन की स्थापना के लिये उनको पूरा धराशायी करके जगह साफ करना और पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग करके पुनर्निर्माण करना। मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न करने के सम्बन्ध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन परम आत्मा का, जो प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करता है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगतिशील आन्दोलन का ध्येय मनुष्य द्वारा अपनी सेवा के लिये प्रकृति पर विजय प्राप्त करना मानते हैं। इसको दिशा देने के पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है। हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

यदि आपका विश्वास है कि एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी ईश्वर है, जिसने विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और संतापों से पूर्ण दुनिया - असंख्य दुखों के शाश्वत अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित! एक भी व्यक्ति तो पूरी तरह संतृष्ट नही है। कृपया यह न कहें कि यही उसका नियम है। यदि वह किसी नियम से बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं है। वह भी हमारी ही तरह नियमों का दास है। कृपा करके यह भी न कहें कि यह उसका मनोरंजन है। नीरो ने बस एक रोम जलाया था। उसने बहुत थोड़ी संख्या में लोगों की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने पूर्ण मनोरंजन के लिये। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाये जाते हैं। पन्ने उसकी निन्दा के वाक्यों से काले पुते हैं, भर्त्सना करते हैं - नीरो एक हृदयहीन, निर्दयी, दुष्ट। एक चंगेज खाँ ने अपने आनन्द के लिये कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा करते हैं। तब किस प्रकार तुम अपने ईश्वर को न्यायोचित ठहराते हो? उस शाश्वत नीरो को, जो हर दिन, हर घण्टे और हर मिनट असंख्य दुख देता रहा, और अभी भी दे रहा है। फिर तुम कैसे उसके दुष्कर्मों का पक्ष लेने की सोचते हो, जो चंगेज खाँ से प्रत्येक क्षण अधिक है? क्या यह सब बाद में इन निर्दोष कष्ट सहने वालों को पुरस्कार और गलती करने वालों को दण्ड देने के लिये हो रहा है? ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे, जो हमारे शरीर पर घाव करने का साहस इसलिये करता है कि बाद में मुलायम और आरामदायक मलहम लगायेगा? ग्लैडिएटर संस्था के व्यवस्थापक कहाँ तक उचित करते थे कि एक भूखे खूंख्वार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि, यदि वह उससे जान बचा लेता है, तो उसकी खूब देखभाल की जायेगी? इसलिये मैं पूछता हूँ कि उस चेतन परम आत्मा ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों की रचना क्यों की? आनन्द लूटने के लिये? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?

तुम मुसलमानों और ईसाइयो! तुम तो पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते। तुम तो हिन्दुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षतः निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने शब्द द्वारा विश्व के उत्पत्ति के लिये छः दिन तक क्यों परिश्रम किया? और प्रत्येक दिन वह क्यों कहता है कि सब ठीक है? बुलाओ उसे आज। उसे पिछला इतिहास दिखाओ। उसे आज की परिस्थितियों का अध्ययन करने दो। हम देखेंगे कि क्या वह कहने का साहस करता है कि सब ठीक है। कारावास की काल-कोठरियों से लेकर झोपड़ियों की बस्तियों तक भूख से तड़पते लाखों इन्सानों से लेकर उन शोषित मजदूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक निरुत्साह से देख रहे हैं तथा उस मानवशक्ति की बर्बादी देख रहे हैं, जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा, और अधिक उत्पादन को जरूरतमन्द लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देना बेहतर समझने से लेकर राजाओं के उन महलों तक जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है- उसको यह सब देखने दो और फिर कहे - सब कुछ ठीक है! क्यों और कहाँ से? यही मेरा प्रश्न है। तुम चुप हो। ठीक है, तो मैं आगे चलता हूँ।

और तुम हिन्दुओ, तुम कहते हो कि आज जो कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं और आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अतः वे सत्ता का आनन्द लूट रहे हैं। मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे। उन्होंने ऐसे सिद्धान्त गढ़े, जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफी ताकत है। न्यायशास्त्र के अनुसार दण्ड को अपराधी पर पड़ने वाले असर के आधार पर केवल तीन कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। वे हैं - प्रतिकार, भय तथा सुधार। आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धान्त की निन्दा की जाती है। भयभीत करने के सिद्धान्त का भी अन्त वहीं है। सुधार करने का सिद्धान्त ही केवल आवश्यक है और मानवता की प्रगति के लिये अनिवार्य है। इसका ध्येय अपराधी को योग्य और शान्तिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है। किन्तु यदि हम मनुष्यों को अपराधी मान भी लें, तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिये गये दण्ड की क्या प्रकृति है? तुम कहते हो वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी-बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है। तुम ऐसे 84 लाख दण्डों को गिनाते हो। मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर इनका सुधारक के रूप में क्या असर है? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो, जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गधा के रूप में पैदा हुए थे? एक भी नहीं? अपने पुराणों से उदाहरण न दो। मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है। गरीबी एक अभिशाप है। यह एक दण्ड है। मैं पूछता हूँ कि दण्ड प्रक्रिया की कहाँ तक प्रशंसा करें, जो अनिवार्यतः मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था या उसको भी ये सारी बातें मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत पर अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो, किसी गरीब या अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का क्या भाग्य होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिये पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने साथियों से तिरस्कृत एवं परित्यक्त रहता है, जो ऊँची जाति में पैदा होने के कारण अपने को ऊँचा समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोगेगा? ईश्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दण्ड के बारे में क्या होगा, जिन्हें दम्भी ब्राह्मणों ने जानबूझ कर अज्ञानी बनाये रखा तथा जिनको तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों - वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा सहन करने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं, तो उसके लिये कौन जिम्मेदार होगा? और उनका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तों! ये सिद्धान्त विशेषाधिकार युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही ठहराते हैं। अपटान सिंक्लेयर ने लिखा था कि मनुष्य को बस अमरत्व में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसकी सारी सम्पत्ति लूट लो। वह बगैर बड़बड़ाये इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबन्धन से ही जेल, फाँसी, कोड़े और ये सिद्धान्त उपजते हैं।

मैं पूछता हूँ तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को क्यों नहीं उस समय रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? यह तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं की लड़ने की उग्रता को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़ने वाली विपत्तियों से उसे बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने की भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर अपना व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार त्याग दें और इस प्रकार केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव समाज को पूँजीवादी बेड़ियों से मुक्त करें? आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं। मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह लागू करे। जहाँ तक सामान्य भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं। वे इसके व्यावहारिक न होने का बहाना लेकर इसका विरोध करते हैं। परमात्मा को आने दो और वह चीज को सही तरीके से कर दे। अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिये नहीं है कि ईश्वर चाहता है बल्कि इसलिये कि उनके पास ताकत है और हममें उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमको अपने प्रभुत्व में ईश्वर की मदद से नहीं रखे हैं, बल्कि बन्दूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे। यह हमारी उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निन्दनीय अपराध - एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचार पूर्ण शोषण - सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टों का मजा ले रहा है? एक नीरो, एक चंगेज, उसका नाश हो!

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति तथा मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ? ठीक है, मैं तुम्हें बताता हूँ। चार्ल्स डारविन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसे पढ़ो। यह एक प्रकृति की घटना है। विभिन्न पदार्थों के, नीहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब? इतिहास देखो। इसी प्रकार की घटना से जन्तु पैदा हुए और एक लम्बे दौर में मानव। डार्विन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरान्त सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति के लगातार विरोध और उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की सम्भवतः सबसे सूक्ष्म व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अन्धा या लंगड़ा पैदा होता है? क्या यह उसके पूर्वजन्म में किये गये कार्यों का फल नहीं है? जीवविज्ञान वेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाल लिया है। अवश्य ही तुम एक और बचकाना प्रश्न पूछ सकते हो। यदि ईश्वर नहीं है, तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे? मेरा उत्तर सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। जिस प्रकार वे प्रेतों तथा दुष्ट आत्माओं में विश्वास करने लगे। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और दर्शन अत्यन्त विकसित। इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को है, जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे तथा उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। सभी धर्म, सम्प्रदाय, पन्थ और ऐसी अन्य संस्थाएँ अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध हर विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

मनुष्य की सीमाओं को पहचानने पर, उसकी दुर्बलता व दोष को समझने के बाद परीक्षा की घड़ियों में मनुष्य को बहादुरी से सामना करने के लिये उत्साहित करने, सभी खतरों को पुरुषत्व के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिये ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना हुई। अपने व्यक्तिगत नियमों तथा अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ा कर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है, तो उसका उपयोग एक भय दिखाने वाले के रूप में किया जाता है। ताकि कोई मनुष्य समाज के लिये खतरा न बन जाये। जब उसके अभिभावक गुणों की व्याख्या होती है तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों द्वारा विश्वासघात तथा त्याग देने से अत्यन्त क्लेष में हो, तब उसे इस विचार से सान्त्वना मिल सकती है कि एक सदा सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसको सहारा देगा तथा वह सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिये उपयोगी था। पीड़ा में पड़े मनुष्य के लिये ईश्वर की कल्पना उपयोगी होती है। समाज को इस विश्वास के विरुद्ध लड़ना होगा। मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करता है तथा यथार्थवादी बन जाता है, तब उसे श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पुरुषत्व के साथ सामना करना चाहिए, जिनमें परिस्थितियाँ उसे पटक सकती हैं। यही आज मेरी स्थिति है। यह मेरा अहंकार नहीं है, मेरे दोस्त! यह मेरे सोचने का तरीका है, जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। ईश्वर में विश्वास और रोज-ब-रोज की प्रार्थना को मैं मनुष्य के लिये सबसे स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया। अतः मैं भी एक पुरुष की भाँति फाँसी के फन्दे की अन्तिम घड़ी तक सिर ऊँचा किये खड़ा रहना चाहता हूँ।

हमें देखना है कि मैं कैसे निभा पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे नास्तिक होने की बात बतायी तो उसने कहा, ''अपने अन्तिम दिनों में तुम विश्वास करने लगोगे।'' मैंने कहा, ''नहीं, प्यारे दोस्त, ऐसा नहीं होगा। मैं इसे अपने लिये अपमानजनक तथा भ्रष्ट होने की बात समझाता हूँ। स्वार्थी कारणों से मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।'' पाठकों और दोस्तों, क्या यह अहंकार है? अगर है तो मैं स्वीकार करता हूँ।

- भगत सिंह

Ethics is the answer

We need liberation theologists, like Ambedkar and Gandhi, who can help people discard the worst features of their inherited religious culture and replace them with ethical interpretations

Anand Patwardhan

With fiery orange hidden under a newfound tricolour, Narendra Modi's rise to power saw a mushrooming of the RSS and affiliates like the ABVP. Pseudo "nationalism" invaded every campus. The state-induced suicide of Rohith Vemula triggered a broad Dalit-Left unity against the hegemonic designs of the RSS/ABVP. But despite initial success, the unity was short-lived. The fault lay as much with the Left (of all shades) for being unable to overhaul its internal dynamics, as with Dalit groups that fell prey to red-baiting and exclusivist identity politics.

On one side were traditional Marxists, brought up to believe that caste would automatically wither away once the economic base became socialist. On the other were Dalits who understandably did not trust largely upper caste-led formations. Sadly, the idea that individuals are indelibly marked by birth gained currency.

Identity politics is a double-edged weapon. As long as identifiable groups are oppressed, the oppressed unite according to identity. "Black is beautiful" was a necessary movement for Afro-Americans in the US, just as pride in Dalit or Buddhist identity is necessary in India. The trouble begins when this turns into an exclusivist movement. Malcolm X went through a black Muslim phase when he described all white people as "devils". But in his later years, he completely rejected this for a much more inclusive critique of injustice and inequality. That is when the American "deep state" killed him. Similarly, while a broad section of Dalits are inclusive and understand the distinction Ambedkar made between the ideology of Brahminism and individuals who happen to be born "upper" caste, there is a tiny section that sees birth as all-defining. The fact that Western post-modernists encourage identity politics in preference to class analysis has given separatist politics international acceptance.

The Left and Dalits should have been natural allies. People like Comrade Govind Pansare, Kanhaiya Kumar and Jignesh Mevani have represented this unity and HCU, JNU and many Indian campuses saw its amazing potential. Into this mix, I would add progressive Gandhians — a Narendra Dabholkar, a Medha Patkar, who adhere to non-violence but always fight for the oppressed.

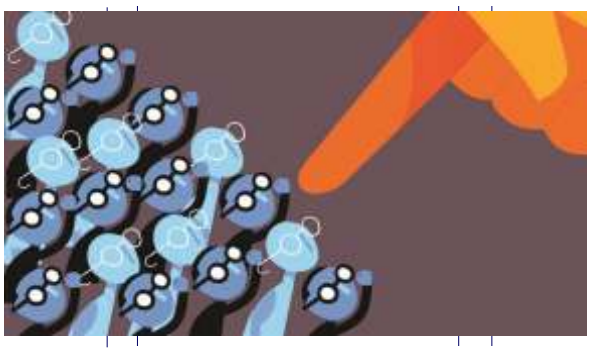

Both Gandhi and Ambedkar recognised that this country was so steeped in religion that atheism or pure rationality would not reach the masses. Each in his own way became a liberation theologist. Unlike Ambedkar, Gandhi did not choose his religion but inherited it. But to this, he applied post-Enlightenment ethical values that were essentially modern. When he began manual scavenging, he destroyed the very basis of the pollution/purity dichotomy at the heart of the caste system. Theoretically, for a long time, he infamously clung to the concept of Varnashrama Dharma, but in actual deed, he destroyed it the day he took up manual scavenging, a job reserved for so-called "untouchables".

As time went on, Gandhi became ever more radical. He clearly learned from Ambedkar as well as from his own intuition. Later in life, he refused to attend any marriage that was not an inter-caste marriage. He fashioned out of his inherited Hinduism something entirely new. Only the idiom remained, not the original Sanatan Dharma. Whether his reluctance to discard the idiom stemmed from a desire to speak to the Indian masses in a language they could easily follow, or from his own belief system, is debatable. What is unmistakable is that Gandhi's ethical code bears little resemblance to the hierarchical, vengeful structure of traditional Hinduism.

Unlike Gandhi, Ambedkar clearly saw how oppressive the religion of his birth was, being a direct victim. So, he searched for its best alternative. After examining many religions, he finally chose the one closest to Reason. Buddhism is one world religion that does not posit an external, all-knowing God. While retaining Buddhism's strong ethical core, Ambedkar discarded irrational tenets like reincarnation that traditional Buddhists follow. So I see Ambedkar and Gandhi as liberation theologists. In the same way that radical Left priests like Ernesto Cardenal in Latin America re-interpreted Jesus Christ as a revolutionary who fought and died for justice to the poor, Gandhi and Ambedkar gave new ethical meaning to the religions they adapted or adopted.

I am not equating the two. Their differences are obvious. One came from a privileged caste, the other from the most oppressed. One was steeped in traditional religion in his formative years, while the other came from a caste denied the right to education but rose to become the best-read, greatest intellectual of modern India.

Neither am I blind to Gandhi's paradoxes, like his life-long demonisation of sexuality. His insistence on chastity puts him in the same irrational, patriarchal boat as the priests, monks and nuns of many world religions. And yet, by introducing the charkha as a weapon of non-violent resistance, Gandhi brought thousands of women into the mainstream of the Indian freedom movement.

Can Gandhi's Sarva Dharma Samabhava (all religions are equal) take the place of Ambedkar's constitutionally guaranteed democratic rights? I think not. We need the Constitution much more than we need holy books. And yet, as many in our country are still hooked to holy books and unholy pretenders, we need liberation theologists who can help people discard the worst features of their inherited religious culture and replace them with ethical, non-exclusivist interpretations. Waiting for everyone to become rationalists may take centuries. Ethics is the answer. Small wonder that Ambedkar and Gandhi, each in turn arrived at individual definitions of ahimsa.

Egalitarian humanists at heart, their affinities are greater than their differences. Take the act of "satyagraha", a term coined by Gandhi. Ambedkar used this very term and form of struggle to launch his Mahad Satyagraha to claim drinking water rights. There are many other examples of common ideas and action. I was pleasantly shocked to read what Ambedkar had to say in 1932 immediately after concluding the now-infamous Poona Pact (where the idea of separate electorates for Dalits was abandoned in favour of reserved seats for Dalits). The popular theory is that Ambedkar was blackmailed by Gandhi's fast-unto-death into accepting a bitter compromise. But Ambedkar's tone in 1932 after signing the pact was totally different. He had high praise for Gandhi and stated that the "Mahatma" (yes, contrary to popular belief, Ambedkar used the term "Mahatma" at this point) offered a much better deal for Dalits in terms of reserved seats than Ambedkar himself had asked or hoped for. There is no denying that Ambedkar did get disgusted with the Congress in later years. How much of the blame for the failures of the Congress is attributable to Gandhi is questionable. We know that Gandhi's writ did not work in

preventing Partition or the bloodshed that preceded and followed it, and that Gandhi did not attend the flag hoisting on Independence Day. He was busy fighting the communal inferno in the countryside.

Gandhi had a lot of obscurantist ideas to start with, but, as time went by, he kept evolving. In the end, I see him as a great humanist who died for his belief in non-violence and universality. He was also an inventive anti-imperialist (though much earlier, he had supported the British Empire) and an organic naturalist that today's consumerist, globally warmed world desperately needs.

Throughout his life, Ambedkar fought for reason and justice without resorting to violence. Today, his followers, like the Ambedkar Students Association, are leading the resistance against religious and caste hatred. Against all odds, Radhika and Raja Vemula (Rohith Vemula's mother and brother) are continuing the fight for justice. With the rising spectre of intolerant authoritarianism, is it not time for all humanists, rationalists and fighters for social and economic justice to unite against the usurpers of our democracy and our history?

The writer has been making documentary films on India's political reality for over four decades

http://indianexpress.com/article/opinion/columns/ethics-is-the-answer-abvp-rss-rohith-vemula-dalits-4626871/

Appeal to the Readers

You will be happy to know that the **Voice of Buddha** will now be published both in Hindi and English so that readers who cannot read in Hindi can make use of the English edition. I appeal to the readers to send their contribution through Bank draft in favour of **'Justice Publications'** at T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001. The contribution amount can also be transferred in 'Justice Publications' Punjab National Bank account no. 0636000102165381 branch Janpath, New Delhi, under intimation to us by email or telephone or by letter. Sometimes, it might happen that you don't receive the Voice of Buddha. In that case kindly write to us and also check up with the post office. As we are facing financial crisis to run it, you all are requested to send the contribution regularly.

Contribution:
Five years : Rs. 600/-
One year : Rs. 150/-

VOICE OF BUDDHA

Publisher : Dr. UDIT RAJ (RAM RAJ), Chairman - Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42

● Year : 20 ● Issue 11 ● Fortnightly ● Bi-lingual ● Total Pages 8 ● 16 to 30 April, 2017

This article has been published in 'The Pioneer' on 13th April, 2017

Social Harmony from Ambedkar

14 April is the birth Anniversary of Dr Ambedkar. Whole nation celebrates the day. People gather in thousands and lakhs. One can hardly find a corner in the country where such events are not going on. The celebration goes on for more than a month or so. The organisers are mainly from SC/ST communities. Though such events create awareness but they often miss out to bring out the essence of the event. The question often asked is that whether Dr Ambedkar worked only for Dalits? The works done by Dr Ambedkar for women empowerment were never limited to women community from dalit and tribal communities rather it targeted the women community irrespective of their caste and religion. Inspite of that participation from non dalits and non tribals are often limited as guest only.

If Dr Ambedkar had been alive today, he would have outrightly condemned these fan fares and celebration. Through out his life, he fought for rationality. These irrational celebrations definitely would have hurt him. Throughout the year we celebrate birth and death anniversaries of great personalities of the country such as Gandhiji, Sardar Patel, Subhash Chandra Bose etc. Other than anniversaries, seminars and meetings are often organised to discuss the ideologies and contributions of them. If we leave few exceptions, there are hardly any event which is organised to propagate the ideas of Dr Ambedkar. Even share of space provided in literature and school syllabusto Dr Ambedkar compared to other such great sons of Mother India, we will certainly find some injustice done with Dr Ambedkar.

Dalit intelligentsia and writers have even questioned that why they should participate in anniversaries, meetings and seminars of others, when non dalits don't participate in celebrations for Dr Ambedkar, Jyotibha phule, Sahuji Maharaj. They have even started questioning that why should they invite scholars and thinkers of those communities who do not celebrate our leaders. Why a dalit and tribal is not invited as speaker or guest to celebrate the anniversary of Statesman born in Brahmin, Kshatriya or Vaishyas communities. Non Dalits speakers come to share their views on Dr Ambedkar and preach them how to follow Dr Ambedkar teachings. Ideally, it should be other way around. Non dalits should be made aware of Dr Ambedkar's principles. It is as important for non dalits and non tribals to understand the ideas of Dr Ambedkar as it is for dalits. Discrimination will end only when non dalits and non tribals communities start to understand Baba Saheb Ambedkar.

Thoughts of Dr Ambedkar is important not only for dalit upliftment but also for nation building. Caste bond is much more stronger than religious one in our country. These caste ridden division didn't broke even during the heydays of our country. This is the prime reason why so many invaders have succeeded in ruling over us. Even today, loyalty to caste often supersede the loyalty to religion and nation.

Breaking the chains of caste system looksnearly impossible in near future. To have social harmony, it will be a wise move that non dalit and non tribal communities start celebrating the occasion of political leaders, great personalities and thinkers born in SC/ST communities. This will not only send a positive message to dalit community and other sectionsbut will also help in breaking the chains of caste based divisions. If such positive moves are not made, days are not far when caste system will start dividing great personalities also. During 70s and 80s, no one would have expected that dalits will form political parties. If equal participation would have been given to dalits since freedom then fight for social equality would not have taken such a huge shape. It is visible now a days that dalit youths prefer to study and read about lives of thinkers and leaders from their community only. Even on social media, younger generation of SCs and STs discuss and debate about the heroes and personalities born in their community only, which is definitely not a positive trend.This trend can stop only if others also follow the leaders born in SC/ST communities. There is a sense of negativity among youths as to why non dalits and non tribals never follow and appreciate the ideas of dalits thinkers and leaders. Hon'ble PM has a clear understanding of this developing trend. Therefore, he never fails to appreciate the contribution of Dr Ambedkar, wherever he finds such an opportunity and I believe this should form part of discussions at other places also.

- Dr. Udit Raj

Achieving Ambedkar Jayanti

Dr Ambedkar has always been against idol worship. He had said against it numerous times. Inspite of the fact, there are more statues of Dr Ambedkar in the country than anybody else. Ambedkar Jayanti is celebrated every year throughout the country on 14th April. Celebration starts much before and continues much later to 14th April. Largely the organisers of such celebration are limited to Dalit community. Dr Ambedkar fought for the rights of SCs/STs communities through out his life and they are the one, enjoying the fruits of struggles of Dr Ambedkar. Following ideology is differentfrom enjoying rights. Dr Ambedkar fight was never behind grabbing material benefits like reservation, scholarship, promotion, gas and petrol outlets and of course, people representatives at various level. Ideally the purpose of celebrating birth anniversary should be to remember the struggle and life of such great personalities. Speeches and discussions are often done but such lessonsare hardly remembered after the event is over. The day when Dr Ambedkar's teachingsstart to be followed beyond mere speeches will be the day a real change will happen.

Such celebration have become a mean to become a public figure. Often organisers of such event have got an iota of understanding about real teachings of Dr Ambedkar. Such part time Ambdkarites have their goal fixed at achieving social and political mileage. There can not be an easier way to gain popularity. Majority of the masses gather to show their respect for Dr Ambedkar rather to the organisers. Such celebrations and rituals do not reflect any demand or unity. No body is against such celebrations.But celebration should be organised with spreading the teaching and ideas at their center.

It is upto the dalits and tribals of the country to decide that mere such celebrations are enough for their upliftment. It is not easy to imbibe and follow the revolutionary ideas of Dr Ambedkar. Celebrations are only an easier means to shed away the bigger responsibility that leaders of SC/ST communities owes. It is not easy to break the traditions and customs that have been followed by certain castes for ages. It is easy to run with the flow. Dr Ambedkar moved against the current. He boycotted and scathingly attacked such rotten values and traditions. Community which has been slave for more than 1000 years needs extraordinary efforts to come out of slavery. The worst part is that even true Ambedkarites are also not making necessary efforts in this direction. They are the first in enjoying the rights which were the results of Dr Ambedkar struggles. But when it comes to adopting Buddhism, creating a casteless society and quit the superstition, orthodox ian rites and rituals, only a few come forward to volunteer. Fight and sacrifices kept limited to only speeches and discussions. It is expected from so called upper castes that they will not do caste based discrimination while on the other hand dalit communities are themselves divided into so many sections, hierarchically. It is also true that there is a race going among dalits to come closer to upper castes and such caste based discrimination is widely prevalent even among dalits, themselves.

Broker of politics never lose opportunity to gain political mileage by organising such celebrations. Irrespective of caste or affiliation to parties, no politician wants to lose the opportunity. No one leaves a single stone unturned in praise of Dr Ambedkar. A true Ambedkarite will never compromise with their rights and in return will never partner with the one who does not give them equal respect and rights. Dalits can never unite by only enjoying the fruits of Dr Ambedkar's fight rather they have to follow the ideas propagated by him, too. One can even learn from Islam. Islam founder Prophet Mohammad never focused over idol worshipping rather entire focus was on the imbibing ideologies and principles. Rather than engaging in pity ritual following and worshipping, Ambedkarites should start internalising the ideologies of Dr Ambedkar. History is full of evidence that such movements and ideas have often failed when worshipping and celebrations have taken the centerstage and ideologies have taken the backseat.

- Dr. Udit Raj

Publisher, Printer and Editor - Dr. UDIT RAJ (FORMERLY KNOWN AS RAM RAJ), on behalf of Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42, Telefax:23354843, Printed at Sanjay Printing Works, WZ-4A, Basai Road, New Delhi.
Website : www.uditraj.com E-mail: parisangh1997@gmail.com Computer typesetting by C. L. Maurya